चंद्रसागरजी

का

बहिष्कार क्यों ?

चन्द्रसागरजी का बहिष्कार क्यों किया गया

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञान ध्यान तपो रक्तः तपस्वी स प्रशस्यते ॥

विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य भाव धन रखते हैं
निज पर के हित साधन में, जो निशदिन तत्पर रहते हैं।
स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं ॥

सं० १९९७ के चातुर्मास के बाद इन्दौर नगर में श्री. चन्द्रसागरजी का आगमन हुआ। इसके पहिले उन्होंने बडनगर (जिला उज्जैन) में चातुर्मास किया था । चातुर्मास में उनके कारण बडनगर में जो अशान्ति रही उससे इन्दौर की दि. जैन समाज को यह आशंका हो रही थी कि कहीं सुखशांति पूर्वक धर्म ध्यान में लीन रहने वाली इन्दौर की जैन समाज में भी अशांति न फैल जाय। यही कारण है कि मुनियों की सेवा में सदा तत्पर और मुनिधर्म की रक्षा के लिये प्राणपण से चेष्टा करने वाली इन्दौर की दि. जैन समाज ने अत्यन्त समीप होनेपर

भी चन्द्रसागरजी को अपने यहां आने के लिये आमंत्रित नहीं किया। केवल व्यक्तिगत रूप से दस पांच आदमी बडनगर आते जाते रहे और इन्दौर आने के लिये आग्रह करते रहे। इन्दौर की सम्पूर्ण दि. जैन समाज की इच्छा न होते हुए भी उक्त व्यक्तियों के आग्रह से चन्द्रसागरजी इन्दौर आये। और जो आशंका समाज को हो रही थी वह प्रगट होने लगी। इसलिये इन्दौर की समाज में खलबली पैदा हो गई और मुनि-आगमन से जहां शांति का वातावरण और धर्म ध्यान की वृद्धि होना चाहिये वहां अशांति और द्वेष का वातावरण फैलने लगा। यह देखकर समाज अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में विचार करने लगी। जिस इन्दौर समाज ने मुनि धर्म रक्षा के लिये प्राणपण से चेष्टा की हो, इन्दौर राज्य द्वारा नग्न–मुनि–विहार पर रुकावट डाली जाने पर खान पान, सुख दुःख की परवाह न कर उस बंधन को हटवाने का प्रयत्न किया हो और सफलता पाई हो, हैदराबाद, भरतपुर आदि रियासतों के द्वारा मुनि–विहार को बन्द कर देने पर न केवल इन्दौर के किन्तु अखिल भारतीय दि. जैन समाज के सर्व मान्य मुखिया दानवीर, रा. ब. रा. भू. राव राजा, राज्य रत्न, जैन दिवाकर, ती. भ. शिरोमणि सर सेठ हुकमचंदजी के नेतृत्व में प्रयत्न किया हो और रुकावटें उठवाई हों यहां तक कि जयपुर राज्य में इन्हीं चन्द्रसागरजी पर जब वारन्ट निकाला गया तब प्रयत्नों के द्वारा उस वारन्ट को हटवाया हो तथा १०८ श्री शांतिसागरजी,

(छाणी) श्री १०८ मुनि वीर सागरजी, श्री १०८ मुनि जय कीर्तिजी, आदि दि. निर्ग्रन्थ मुनियों के चातुर्मास होने का सौभाग्य प्राप्त किया हो, स्वर्गीय श्री १०८ मुनि आनन्दसागरजी की श्रद्धाभक्ति के साथ वैयावृत्य की हो, और अपने एक मुमुक्षु आत्मा के द्वारा जैनेश्वरी दीक्षा धारण करके श्री १०८ मुनि श्री सूर्यसागरजी के नाम से भारत की जैन समाज का उपदेशामृत से कल्याण करने पर स्वतः को धनधन्य माना हो, तथा भाई सा. श्री अमरचंदजी, पंडित दरयावसिंहजी सोधिया, पंडित पन्नालालजी गोधा आदि की उदासीन, त्यागमय और वीतरागी सत्संगति में सदा जिनवचन सुनने का लाभ प्राप्त किया हो और मुनि धर्म, श्रावक धर्म आदि विषयों पर गम्भीर और शास्त्रानुकूल चर्चा का सदा अवसर पाया हो उसके सन्मुख चन्द्रसागरजी द्वारा उत्पन्न परिस्थिति से कैसा जटिल प्रश्न खडा हो गया होगा इसका पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। मुनि धर्म के विरोध में स्वप्न में भी विचार न करने वाली इन्दौर की दि. जैन समाज का चन्द्रसागरजी के द्वारा धर्म विरुद्ध आचरण देखकर अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में विचार करना स्वाभाविक ही था। अतएव इस सम्बन्ध में वह बहुत गम्भीरता और शांति के साथ विचार करने लगी। उसे (इन्दौर दि. जैन समाज को) यह भी डर था कि कोई कार्य ऐसा न हो जाय जो आगम के प्रतिकूल हो।

इन्दौर की दि. जैन समाज प्रायः सर्वांश में तेरा पंथानुयायी है। दस, पच्चीस घर यदि बीस पंथानुयायी हों भी तो भी

वे बहुजन समाज के विचारों और आम्नाय के अनुसार शांतिपूर्वक धर्म का प्रतिपादन करते हैं। नगर के कुछ पन्द्रह सोलह दि. जैन मन्दिरों में तेरा पंथ आम्नाय के अनुसार ही पूजन प्रक्षालादि नित्य नैमित्तिक कृत्य होते हैं। चन्द्रसागरजी के आने पर उनके साथ की स्त्रियों ने तेरा पंथ आम्नाय के प्रतिकूल पूजन, अभिषेक आदि क्रियाएँ करने का हठ किया तब समाज ने इनकी सुविधा के लिये बीस पंथानुयायी श्री सेठ भँवरलालजी सेठी के चैत्यालय से मंगवा कर पृथक् प्रतिमा का प्रबन्ध कर दिया। जिससे कि समाज में इस प्रश्न को लेकर अशांति उत्पन्न न होने पावे परन्तु यह प्रयत्न भी कारगर सिद्ध न हुआ और उनके साथी स्त्री-पुरुष ऐसे कार्य करने के लिये उद्यत हुए जिनसे कि तेरा पंथ आम्नाय की मान्यता भंग हो। इसके सिवाय स्वयं चन्द्रसागरजी अपने भाषणों में ऐसे उपदेश देने लगे जो राग द्वेष से भरे हुए, आगम के प्रतिकूल, कषाय परिपोषक, भाषा समिति नामक मूलगुण के विरुद्ध और अशांति के उत्पादक थे। उनके कुछ उदाहरण निम्न लिखित हैं :—

(१) अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व के दिनों में हरी या सचित्त वस्तु खाने में कोई दोष नहीं है। जिन्होंने ऐसी मर्यादा कर रक्खी हो वह मिथ्या है उसे छोड देना चाहिये।

(२) मासिक धर्म के चौथे दिन स्त्रियाँ पूजन प्रक्षालादि कर सकती हैं।

(३) वृक्ष या पौंधों से टूटे हुए फल फूल, पत्र पुष्प आदि सचित्त नहीं हैं। (इस संबंध में बडे २ विद्वानों एवं त्यागियोंने आपके कथन को शास्त्र विरुद्ध बतलाया और सिद्ध किया है परंतु आप हठ के कारण अपना दुराग्रह नहीं छोडते)

(४) व्याख्यान में ऐसी भाषा का उपयोग करना जिससे महिलाओं को लज्जित होना पडे।

(५) प्रतिष्ठित मूर्तियाँ दहेज में देना चाहिये।

इस प्रकार अनेक तरह से चन्द्रसागरजी के धर्म के प्रतिकूल उपदेशादि होने लगे। जिन आगम में मुनियों के २८ मूलगुण बतलाये हैं उनमें से एक भी गुण कम होने पर मुनि संज्ञा नहीं रहती। इन २८ मूल गुणों के सिवाय ३ गुप्तियां भी हैं। उनमें एक वचन गुप्ति है और इसी तरह मूल गुणों में भाषा समिति भी एक गुण है। आपके द्वारा वचन गुप्ति और भाषा समिति का सदा उल्लंघन होता रहता है इसके भी उदाहरण दे देना अनुचित न होगा। परंतु इसके पहले शास्त्रों में भाषा समिति का क्या लक्षण कहा गया है यह जान लेना आवश्यक है—

कर्कशा परुषा कट्वी निष्ठुरा परकोपिनी।
छेदङ्करी मध्यकृशातिमानिन्यनयङ्करा ॥ १६५ ॥
भूतहिंसाकरी चेति दुर्भाषां दशधा त्यजन्
हितं मितमसंदिग्धं स्याद्भाषासमितो वदन् ॥ १६६ ॥

अनगारधर्मामृत चतुर्थ अध्याय

इन श्लोकों की टीका करते हुए श्री पं. आशाधरजी ने लिखा है कि १ कर्कशा (सन्ताप पैदा करनेवाली भाषा), २ परुषा (मर्म भेदनेवाली), ३ कटूवी (उद्वेग पैदा करने वाली), ४ निष्ठुरा (मारूंगा, तेरा सिर फोडूंगा आदि प्रकार की भाषा), ५ परकोपिनी (किसी को निर्लज्ज वगैरह बताना), ६ छेदङ्करा (जो दोष न हों वे दोष लगाना), ७ मध्यकृशा (निष्ठुर भाषा) ८ अतिमानिनि (अपनी प्रशंसा व दूसरों की निंदा करनेवाली भाषा), ९ अनयंकरा (शील को खंडन करनेवाली या विद्वेष पैदा करनेवाली), १० भूत हिंसाकरी (प्राणियों का वध करनेवाली) इन दश प्रकार की भाषाओं का उपयोग न कर हित अर्थात् अपना और परायेका उपकार करनेवाली, मित अर्थात् थोडे से शब्दों में अपनी भावना प्रगट करनेवाली और संशय रहित भाषा का उपयोग करना भाषा समिति कहलाती है।

चंद्रसागरजी के भाषण में ऊपर बतलाई हुई त्यागने योग्य दशों प्रकार की भाषाओं का उपयोग किया जाता है जिनके थोडे से उदाहरण इस प्रकार हैं:—

१ लोहडसाजन के साथ खान पान करने वालों को शूद्र बतलाना।

२ श्रावकों की मूछ, दाढी, कपडे आदि के पहनाव-ओढावपर कटाक्ष करना।

३ स्त्रियों को रांडें आदि कहना और विधवाओं के पहनाव आदि पर कटाक्ष करना।

४ श्रीमान् सर सेठ हुकमचंदजी के भव्य दि. जैन मन्दिर को कांच महल और इस मन्दिर की मूर्तियों को अन्धे भगवान कहना।

५ आहार न देनेवालों को शूद्र या मुसलमान बतलाना।

६ संध्या समय शास्त्र पढने वाले को अधर्मी बतलाना।

७ अश्लील एवं अपशब्द का उच्चारण करना।

८ बात बात में क्रोध करना (क्रोध कषाय तो आपकी बहुतही तीव्र है। और इस कारण २८ मूल गुणों में जो पंचेन्द्रिय-जय गुण माना है वह नहीं पल सकता। क्योंकि क्रोधी व्यक्ति इंद्रियजयी कैसे हो सकता है ?

इस प्रकार भाषा समिति का पालन आप सर्वथा नहीं करते हैं और इसी कारण वचन गुप्ति का भी पालन आपके द्वारा नहीं हो पाता।

शास्त्रों में कहा है कि मुनियों को विकथायें-स्त्री कथा, अर्थ कथा, भक्तकथा, राज कथा-आदि वचन से ही नहीं किन्तु मन, वचन काय तीनों से ही त्याग करना चाहिये। इस सम्बन्ध में मूलाचार में लिखा है —

विकहा विसोत्तियाणं खणमवि हिदएण ते ण चिंतति ।
धम्मे लद्धमदीया विकहा तिविहेण वज्जंति ॥ ९१ ॥

अनगार भावनाधिकार ।

अर्थात् मुनियों को मन वचन काय से विकथाओं का त्याग करना चाहिये और वचन गुप्ति में विकथा का उपयोग करने की मनाही अनगारधर्मामृत में की गई है परंतु इन प्रमाणों के विरुद्ध आप रात्रि के समय दो सौ केन्डक पावर के बिजली के प्रकाश में विकथाओं से ओत प्रोत भरे हुए टाइम्स ऑफ इण्डिया आदि समाचार पत्र पढते और परचेबाजी के लिये परचों को लिखते लिखवाते, तथा सलाह मश्वरा करते कराते हैं । इन थोडे से उदाहरणों से दि. जैन समाज यह अच्छी तरह जान सकेगी कि चन्द्रसागरजी पूर्ण रीति से मूलगुणों का पालन नहीं करते । उनमें न केवल अतिचार का ही दोष लगता है किन्तु अनाचार का भी । दूसरे मूलगुणों को न भी देखा जाय तो भी वचनगुप्ति और भाषासमिति नामक मूलगुण का पालन तो वे सर्वथा नहीं करते । अतः वे मुनिपद के अपने आप अयोग्य ठहर जाते हैं ।

अब हम चंद्रसागरजी की उन बातों का भी उल्लेख करेंगे जो उन्हें मुनि पद पर रहने के अयोग्य सिद्ध करती हैं और जिनका आचरण उन्होंने इन्दौर में तथा दूसरी जगहों पर किया है।

१ नमस्कार आदि न करने वालों को आप कुत्ते आदि अपशब्द बोलते हैं ।

२ शास्त्र में प्रतिदिन ५ कोस तक चलने की आज्ञा है परन्तु आप नौ नौ दस दस कोस तक चलते हैं।

३ यह जानते हुए भी कि इन्दौर, मालवा, बुन्देलखंड आदि उत्तर भारत के प्रान्तों में तेरह पंथी आम्नाय का प्रचार है परन्तु आप उसके (तेरापंथ) विरुद्ध प्रचार करके उन्हें मिथ्यात्वी, पापी, पाखंडी, धूर्त, धोकेबाज आदि कहकर तेरापंथ आम्नायी श्रावकों, को भडकाते हैं और इस तरह समाज में कलहाग्नि फैलाते हैं।

४ भीड के साथ खडे होकर फोटो खिंचवाते हैं।

५ म्लेच्छ ड्रायवरों की मोटरों में जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति को रात्रि में लाने लेजाने में दोष नहीं समझते (बडनगर से हालही में एक जिन भगवान की मूर्ति इसी तरह इन्दौर में आपने मंगवाई है।

६ रात्री में बातचीत करते और कलह वर्धक परचे बाजी के लिये नोटिस लिखते लिखाते हैं।

७ मन्दिर में नाशिका आदि के मल को पटकते, थूकते और इस प्रकार जिनालय की अविनय करते हैं।

८ अपने साथ गृहस्थ श्राविकाओं को रखते हैं। और उनसे अभिषेकादि के सम्बन्ध में झगडा कराते हैं जिससे कि पुरुष समाज कुछ उनसे कह न सके।

९ शास्त्र आज्ञा के विरुद्ध नगरों और ग्रामोंमें नियत समय से अधिक ठहरते और कलह के साधन खडे करते हैं। इन्दौर में ही आपको ठहरे हुए लगभग ४० दिन हो गये हैं।

१० जयपुर में आपने बातों ही बातों में एक ब्रह्मचारी पर कमण्डल फेंक मारा था जिससे उसके दो दांत टूट गये थे इससे मालूम होता है कि आप में आदान निक्षेपण समिति का भी अभाव है।

११ जयपुर, लूणियावास, कुचामन, ब्यावर, उज्जैन, लाडनू, सुजानगढ, नावाँ, पाडवा, नशीराबाद, किशनगढ, बडनगर आदि स्थानोंमें जहां २ गये या चातुर्मास किया वहां वहां फूट डलवा दी, झगडा करवाया, मारपीट, सिर फुटौवल, खून खराबी तक वारदातें हुईं। इन घटनाओं के सम्बन्ध में काफी प्रमाण मौजूद हैं।

स्वर्गीय धर्मवीर, दानवीर, विद्याभूषण, जिनवाणी भक्त शिरोमणि सेठ रावजी सखाराम दोशी ने लिखा था कि:—

चंद्रसागरजी हठी, वा जिद्दी आदमी हैं सचित्ताचित्त आन्दोलन से वे तथा उनके सहायक शास्त्री पंडित अपना सन्मान समाज में गिरा रहे हैं। वे अपने गुरु के विद्रोही शिष्य हैं। जो अपने गुरु की बात नहीं मानता वह दूसरों की कब मानने लगा।

श्रीमान् पं. वंशीधरजी शास्त्री शोलापुर ने चन्द्रसागरजी को लिखा था:-

"आप जो यह गुरु द्रोह का अनुआपन कर रहे हैं सो क्षंतव्य नहीं है। आपका अपनी हठ तथा कषाय छोड अलग चातुर्मास न कर आचार्य महाराज से क्षमा प्रार्थना कर संघ में शामिल हो जाना चाहिये। यदि आपने इतने कहने पर ध्यान नहीं दिया तो मुझे बहुत कुछ लिखना पडेगा"।

इन बातों के रहते हुए कोई भी समझदार व्यक्ति चाहे वह किसी भी आम्नाय का हो केवल दिगम्बरत्व के कारण चन्द्रसागरजी को मुनि नहीं मान सकता क्योंकि मुनि धर्म के सम्बन्ध में तेरह पंथ और बीस पंथ का प्रायः कोई आम्नाय भेद नहीं है। दोनो पंथ वाले इस सम्बन्ध में एक मत हैं और यह विश्वास करने के लिये काफी प्रमाण हैं कि मुनि धर्म का जानकार कोई भी समझदार बीस पंथी भाई उक्त कारणों से चन्द्रसागरजी को मुनि मानने को तय्यार न हो सकेगा।

दि. जैन समाज इन्दौर जहां बीस पंथ आम्नाय प्रचलित हैं वहां किसी प्रकार का हस्तक्षेप या विरोध उचित नहीं समझती।

इसी तरह तेरह पंथ आम्नाय के प्रति भी व्यवहार होना आवश्यक समझती है। अखिल दि. जैन समाज में उसकी दृष्टि

से शान्ति बनाये रखने का यही एक मात्र साधन है। जो लोग यह कहते हैं कि चन्द्रसागरजी के द्वारा बीस पंथ आम्नाय का प्रचार होने के कारण इन्दौर की समाज भड़क गई है और बीस पंथ से द्वेष करती है यह सर्वथा असत्य है। उसे आम्नाय के सम्बन्ध में किसी से द्वेष नहीं है न किसी व्यक्ति या वर्ग से घृणा ही है। जैसा कि ऊपर कहा गया है इन्दौर समाज न किसी की मान्यता में हाथ डालना चाहती है और न वह पसन्द करती है कि दूसरे उसकी मान्यता में हाथ डालें। अपनी अपनी मान्यताओं के अनुसार चलते हुए प्रेम और शांतिपूर्वक समाज में रहने की वह भावना और इच्छा रखती है। इन्दौर के प्रसिद्ध सर्वमान्य नेता दानवीर, रायबहादुर, राज्यभूषण, राव राजा, जैन दिवाकर, राज्य रत्न, सर सेठ हुकमचंदजी सा. की भी इसी प्रकार की मान्यता और भावना है। प्रसंग पड़ने पर वे कभी आम्नाय भेद को सामने न लाकर सेवा के लिये उद्यत हो जाते हैं। इन्दौर के दूसरे धनीमानी और विद्वान लोग भी इसी मनोवृत्ति के धारक एवं पोषक हैं। अतएव जैसा कि प्रारम्भ में लिखा गया है चन्द्रसागरजी के उन कृत्यों को देखकर, जो धर्म के प्रतिकूल हैं तथा जिनका दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका है, इन्दौर दि. जैन समाज में चन्द्रसागरजी का प्रश्न गम्भीरता के साथ खड़ा होना स्वाभाविक था। अतएव इस प्रश्न पर बहुत विचार विमर्ष किया गया। जैन सिद्धान्तालंकार श्रीमान पंडित बंसीधरजी जैसे शांत और धर्मभीरु विद्वानों से सम्मति की गई, शास्त्राधार देखे

गये और इन सब प्रयत्नों पर से यही सिद्ध हुआ कि चन्द्रसागरजी मुनिपद के योग्य नहीं हैं। यह हम फिर बतला देना चाहते हैं और बार बार स्पष्ट रूप से कह देना चाहते हैं कि इस निष्कर्ष में आम्नाय भेद का जरा भी सम्बन्ध नहीं था। केवल चन्द्रसागरजी में पूर्णरूप से मूलगुणों का अभाव, दुराचार और शिथिलाचार पोषक उनके उपदेश, कलहकारी उनकी मन, वचन काय की प्रवृत्ति, वीतरागता के विरुद्ध उनका आचरण, आदि बातों ने ही दि. जैन समाज इन्दौर को उक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के लिये बाध्य किया और ता. २२-१२-४० को दि. जैन समाज इन्दौर ने अपनी एक विराट सभा में तीर्थभक्त श्रीमान् सेठ फतेहचंदजी सेठी के सभापतित्व में निम्न लिखित प्रस्ताव पास किया।

प्रस्ताव.

"इन्दौर की समस्त दिगम्बर जैन समाज प्रस्ताव करती है कि मुनिभेषी चन्द्रसागरजी (भूतपूर्व नाम खुशालचंदजी पहाड्या) अपने दीक्षागुरू आचार्य श्री १०८ मुनि शांतिसागरजी (दक्षिण) महाराज की आज्ञा में न रहकर उनसे विमुख होकर उनके संघ से अलहदा होकर स्वतंत्र स्वइच्छाचारी हो गये हैं व अब निरंकुश होकर प्रगट मिथ्यात्व तथा असंयम की ओर जीवों की पतनो-न्मुखीप्रवृत्ति कराने वाले उपदेश देने लग गये हैं। उन्हें अपने वचनों का जैन आगम जैन सिद्धांत से मेल बिठालेने का कोई संकोच

नहीं रह गया है। मन चाही प्रवृति करते हुये यत्र तत्र विचर रहे हैं। उन्होंने जगह ब जगह कलह तथा विसंवाद पैदा करने का दृढ संकल्पसा कर लिया है। इस तरह वे जगद्वंद्य मुनिभेष का दुरुपयोग कर रहे हैं। इसलिये मुनि भेषी चन्द्रसागरजी का यह दिगम्बर जैन समाज इन्दौर बहिष्कार करती है कि कोई भी जैन इन्हें दिगम्बर जैन मुनि न माने और न इनके दर्शन वन्दन नमस्कार आदि ही करे, न इनके मुंह से व्याख्यान सुने। इतनाही नहीं किन्तु इन्हें दि. जैन मुनि मानकर अहार भी न देवे"।

इस प्रस्ताव के द्वारा चन्द्रसागरजी का बहिष्कार होजाने पर उनके दस-पांच भक्तों ने शोर मचाना शुरु किया और असभ्य शब्दों से भरे हुए पर्चे निकाले और इन्दौर से बाहिर भ्रमपूर्ण बातें फैलाना शुरु कीं। इस बात का तो उत्तर हम पहले लिख ही चुके हैं कि यह बहिष्कार आम्नाय भेद के कारण नहीं किया गया किन्तु जिन कारणों से किया गया है उनका विवरण शास्त्राधार पूर्वक ऊपर दिया जा चुका है। अब प्रश्न यह रह जाता है कि समाज को बहिष्कार करने का अधिकार था या नहीं? इस सम्बन्ध में हम थोडा विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं। आत्मानुशासन में १५१ वें श्लोक में यह लिखा गया है कि "कलियुग में धर्मस्थापनार्थ दंडनीति का ग्रहण आवश्यक है। मुनियों के सम्बन्ध में दंड राजा और आचार्य द्वारा दिया जा सकता है। परन्तु राजा द्वारा इसलिये दंड नहीं दिया जा सकता कि मुनि

वेषियों के पास धनधान्य आदि नहीं होता और आचार्य इस लिये दंड नहीं देते कि उन्हें अपने शिष्यों से सेवा सत्कार आदि की भावना रहती है। यही कारण है कि कलियुग में साधुमार्ग निष्कलंक नहीं चल पाता।" आत्मानुशासन के इस कथन से यह सिद्ध होता है कि राजा और आचार्य साधुओं को दंड दे सकते हैं। परंतु न देने के कारण रत्नों के समान सच्चे निष्कलंक साधुओं का मिलना कठिन हो गया है। इन्दौर की दिगम्बर जैन समाज ने जब यह देखा कि चन्द्रसागरजी जैसे उत्सूत्राचारी मुनि वेषी दंड के अधिकारी होते हुए भी दंड नहीं पाते हैं। तब उसे अपना कर्तव्य निश्चय करना पड़ा और वह कर्तव्य यही था कि वह समाज को चेतावनी दे दे कि चन्द्रसागरजी का आचार विचार आगम के अनुकूल न होने से उन्हें कोई मुनि न माने न उनका मुनिपद के योग्य आदर सत्कार करे। समन्त भद्र स्वामी ने कहा है कि :—

> भयाशास्नेहलोभाच्च, कुदेवागमलिंगिनाम् :
>
> प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥

अर्थात् भय, आशा, स्नेह, लोभ के वश होकर कुदेव, कुआगम, कुगुरु का विनय या प्रणाम आदि से सत्कार शुद्ध दृष्टियों को नहीं करना चाहिये। इस प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि मुनिवेषियों का आदर सत्कार तक जब कोई शुद्ध दृष्टि व्यक्ति

नहीं कर सकता और जब कि एक ही व्यक्ति को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह यदि किसी को कुगुरु समझे तो प्रणाम आदि न करे। ऐसी अवस्था में यह कैसे माना जा सकता है कि सारी समाज जिसे गुरुपद के योग्य न मानती हो और जिसका आचरण शास्त्र के प्रतिकूल समझती हो उसके सत्कार आदि का और उसे मुनि या गुरु मानने का निषेध न कर सकती हो। सारांश यह कि समन्तभद्रस्वामी के कथनानुसार जब एक व्यक्ति कुगुरु सुगुरु का निर्णय कर सकता है और उसके प्रति अपने व्यवहार का निश्चय कर सकता है तब समाज को स्वभावतः यह अधिकार हो जाता है कि वह इस सम्बन्ध में अपना निर्णय और निश्चय कर सके और वही इंदौर समाज ने किया है और श्रीमान् पूज्य आचार्य महाराज श्री शांतिसागरजी ने भी प्रश्नोंके उत्तर में यही कहा है।

इन्दौर में कुछ वर्षों पहले एक ज्ञान सागर नामधारी मुनि वेषी व्यक्ति आये थे। उस समय बम्बई निवासी स्वर्गीय पंडित पन्नालालजी काशलीवाल इन्दौर में ही थे। आपने उन ज्ञान सागर को आगम विरुद्ध आचरण और व्यवहार के कारण कपडे पहना दिये थे। इससे भी यह पता चलता है कि यदि गृहस्थ देखें कि कोई व्यक्ति अपने आचरण से जिन धर्म का अपवाद करता है और उसके द्वारा जिनलिङ्ग अथवा मुनिपद का परिपालन नहीं होता प्रत्युत मार्ग कलंकित होता है और समाज के उत्सूत्री

अथवा धर्म विमुख हो जाने का भय है तो ऐसी व्यक्ति का वह बहिष्कार ही नहीं उसे कपड़े तक पहना सकते हैं।

हम समझते हैं कि ऊपर की पंक्तियों से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो चुका है कि चंद्रसागरजी का आचरण आगम क प्रतिकूल है, उनके आचरण से समाज में खलबली पैदा हुई, शांति बनाये रखने के लिये प्रयत्न किये गये और जब सफलता न मिली तब लाचार होकर धर्म और समाज की प्रतिष्ठा एवं शांति की रक्षा के लिये उसे उक्त प्रस्ताव पास करना पड़ा अब हमारी अखिल भारतीय दि. जैन समाज से प्रार्थना है कि इस प्रश्न को आम्नाय का प्रश्न न समझे और चन्द्रसागरजी का व्यक्तिगत प्रश्न समझकर उनके साथ वही व्यवहार करने का निश्चय करे जो इन्दौर की समाज ने स्वीकृत किया है। बिना ऐसा किये त्याग मार्ग की पवित्रता और मुनि धर्म कि निष्कलंकता की रक्षा होना कठिन होगा। हमें आशा है की अखिल भारतीय दि. जैन समाज हमारी इस प्रार्थना को स्वीकृत करेगी और इस पर प्रत्येक स्थान की पंचायतियों अपनी स्वीकृति भेजकर हमें अनुगृहित करेगी।

इन्दौर समाज द्वारा

चन्द्रसागरजी के बहिष्कारके समान

सम्पूर्ण स्थानों के पंचोंको भी उनका बहिष्कार करना चाहिये और उसके समाचार हमारे पास भेजना चाहिये।

पता:—

संयोजक, श्री. दि जैन मुनि धर्म रक्षक कमेटी,

इन्दौर.

(परिशिष्ट)

चन्द्रसागरजी के सम्बन्धमें

आचार्य श्री १०८ श्री शांतिसागरजी महाराज

का

—: अभिमत :—

समस्त दिगंबर जैन समाज इंदौर द्वारा ता. २२-१२-४० को रात्रि के समय मारवाडी मंदिर शक्कर बजार में जैनियों की एक विराट सभा में तीर्थभक्त सेठ फतेहचंदजी सेठी (मालिक दुकान सेठ परसरामजी दुलीचंदजी) के सभापतित्व में चार प्रस्ताव पास हुए थे जिसमें एक प्रस्ताव नं. १ का यह था कि " इन्दौर की समस्त दिगम्बर जैन समाज प्रस्ताव करती है कि मुनिभेषी चन्द्रसागरजी (भूतपूर्व नाम खुशालचन्दजी पहाड्या) अपने दीक्षागुरू श्री १०८ मुनि शांतिसागरजी (दक्षिण) महाराज की आज्ञा में न रहकर उनसे विमुख होकर उनके संघ से अलहदा होकर स्वतंत्र स्वइच्छाचारी हो गये हैं व अब भी निरअंकुश होकर प्रगट मिथ्यात्व तथा असंयम की ओर जीवों की पतनोन्मुखीप्रवृत्ति

कराने वाले उपदेश देने लग गये हैं। उन्हें अपने वचनों का जैन आगम जैन सिद्धांत से मेल बिटा लेने का कोई संकोच नहीं रह गया है। मन चाही प्रवृति करते हुवे यत्र तत्र विचर रहे हैं, उन्होंने जगह ब जगह कलह तथा विसंवाद पैदा करने का दृढ संकल्पसा कर लिया है, इस तरह वे जगद्वद्य मुनिभेष का दुर उपयोग कर रहे हैं। इसलिये मुनि भेषी चन्द्रसागरजी का यह दिगंबर जैन समाज इन्दौर बहिष्कार करती है कि कोई भी जैन इन्हें दिगम्बर जैन मुनि न माने और न इनके दर्शन वन्दन नमस्कार आदि ही करे, न इनके मुंह से व्याख्यान सुने, इतनाही नहीं किन्तु इन्हें दि० जैन मुनि मानकर अहार भी न देवे "।

इस प्रकार का प्रस्ताव प्रकाशित होने पर समाज में बहुत कुछ सनसनी फैल गई। अनेक स्थानों से अनेक तरह के अनुकूल -प्रतिकूल पत्र व तार हमारे पास आने लगे। हमने सोचा कि वर्तमान में दिगम्बर जैनियों के सर्वमान्य आचार्य शांतिसिंधु, चारित्रचक्रवर्ती, पूज्यपाद शांतिसागरजी महाराज की राय इस विषय में जान ली जाय इसलिये यहां से मेरे विश्वासपात्र और प्रामाणिक पं० बंशीधरजी शास्त्री को महाराज के पास भेजा। पंडितजी ने ता ६-१-४१ के दिन श्री गिरिनार पर्वतराज पर पूज्यपाद आचार्य महाराज के दर्शन किये और महाराज से गिरिनार पर्वत की प्रथम टोंक पर जिनमंदिर के समीप गुफा के बाहिर संघपात श्रीमान् सेठ घासीलालजी, गेंदालालजी, डाडिम-चंदजी, मोतीलालजी (मालिक फर्म सेठ घासीलालजी पूनमचंदजी प्रतापगढवाले) तथा सेठ फतेहचंदजी उदासीन नागपुर, श्री भाईचंदजी ताराचंदजी आकलूजनिवासी, श्रीमदनलालजी

कुशलचंदजी राजकोट, श्रीबापालालजी भाई राजकोट आदि अनेक सद्ग्रहस्थों तथा ब्रह्मचारियों के समक्ष प्रश्न किये और आचार्य महाराज ने उत्तर दिये।

इन प्रश्नोत्तरों से प्रकृत विषय पर काफी प्रकाश पड़ता है। अतएव साधारण जनता की जानकारी के लिये प्रश्नोत्तरों को यहां प्रकाशित किया जाता है:—

प्रश्न नं. १ चंद्रसागरजी ने आपही से मुनि दीक्षा ली थी न?

उत्तरनं. १ हां हमही से मुनिदीक्षा ली थी।

प्रश्न नं. २ क्या यह बताया जा सकता है कि मुनि चन्द्रसागरजी को संघ से अलहदा कर देनेका क्या कारण हुआ?

उत्तर नं. २ संघ से अलहदा कर देने के अनेक कारण हैं उनके जानने व कहने की क्या जरूरत है?

प्रश्न नं. ३ क्या यह सच है जैसा कि चन्द्रसागरजी का कहना है कि हमको आचार्य (शांतिसागरजी) महाराज ने कहा है कि तुम विशिष्ट विद्वान हो इसलिये तुम जगह बजगह जाकर धर्म प्रचार करो।

उत्तर नं. ३ यह बिलकुल असत्य है। हमने चन्द्रसागर से कभी वैसा नहीं कहा है।

प्रश्न नं. ४ अब भी चन्द्रसागरजी आपकी आज्ञा में हैं या नहीं?

उत्तर नं ४ जो हमारे संघ से अलग है वह हमारी आज्ञा कैसे मानेगा?

प्रश्न नं. ५ छना हुआ पानी, टूटे हुए फल फूल आदि सचित्त हैं या अचित्त?

उत्तर नं ५ हमारी समझ में छनाहुवा पानी तथा टूटे हुए फल फूल आदि सचित्त है और ऐसाही जैन शास्त्रों से जाना जाता है।

प्रश्न नं. ६ जिस गृहस्थ ने अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व के दिनों में हरित शाक न खाने की प्रतिज्ञा ली है उसके घर में आहार न लेना और इस तरह सचित्त त्याग तुडवाने के लिये गृहस्थ को मजबूर करना क्या किसी मुनि का मुनि पद के योग्य कार्य है?

उत्तर नं. ६ ऐसा करना मुनिपदके सर्वथा अयोग्य है अनुचित है।

प्रश्न नं. ७ श्रावक को क्या शासन देवों की पूजन वंदना करना चाहिये?

उत्तर नं. ७ श्रावक दो तरह के होते हैं एक व्रती-दूसरे अव्रती (पाक्षिक) व्रती श्रावक को शासन देवों की पूजन वंदना करने का निषेध है। अव्रती श्रावक भी दो तरह के हाते हैं एक मोही दूसरे निर्मोही। मोही वे हैं जो स्त्री, पुत्र, धन, धान्य आदि की कामना रखते हैं। ऐसे मोही अव्रती श्रावक शासन देवों की सेवा किया करते हैं जो उनसे भिन्न निर्मोही तत्वज्ञानी हैं वे शासन देवों की सेवा, पूजा, वंदना नहीं करते हैं परंतु मुनियोंको शासन देवों की पूजन वन्दना करने का उपदेश नहीं देना चाहिये।

प्रश्न नं. ८ किसी सामाजिक या जातीय झगडों में पडना और फिर उनमें से किसी एक पक्षके लिये आग्रह करना क्या मुनि पद के अधिकार या कर्तव्य में है?

उत्तर नं. ८ मुनि को किसी पक्ष का हठ पकडना तो दूर ही रहा मुनि को तो सामाजिक व जातीय झगडों में पडना ही नहीं चाहिये। उनके झगडोंको निवटाना न निवटाना समाज व जातिवालों पर ही छोड देना चाहिये।

प्रश्न नं. ९ आचार्य (दीक्षागुरु)की आज्ञामें न रह कर स्वैराचारी हुए मुनि दंडपात्र हे या नहीं?

उत्तर नं ९ हां, अवश्य दंड पात्र हैं। लेकिन मुनि को दो ही दंड दे सक्ते हैं। या तो नरेन्द्र या दीक्षा गुरु। सो वर्तमान में जैन राजा तो है नहीं जिसके द्वारा आचार्य उचित शासन व्यवस्था करा सके और दीक्षा गुरु की वह आज्ञा मानता नहीं तब क्या किया जाय।

प्रश्न नं १० "क्या किया जाय"- इसका भी उत्तर आपही दें?

उत्तर नं १० गृहस्थों को उचित है कि ऐसे मुनि का संसर्ग ही छोड दें। न उसके पास कोई जावे, न आवे. न उसका व्याख्यान सुने, न उससे कोई बात करे उससे किसी तरह का भी संबन्ध न रखें। वह मुनि स्वयं वहां से चला जायगा।

इन प्रश्नोत्तरों के बाद ता ८-१-४१ को पंडितजी ने श्रीमान् पूज्य आचार्य महाराज के फिर लगभग ५ बजे जब कि महाराज पर्वत परसे नीचे उतर आये थे, तलहटी की धर्मशाला में दर्शन किये और उनसे प्रार्थना की कि आपसे जो प्रश्नोत्तर हुए हैं उन्हें प्रकाशित कर देने मे कोई आपत्ति तो नहीं, आपकी आज्ञा है न? इस पर आचार्य महाराज ने कहा कि हमने तुमसे ऊपर भी

कह दिया था अब भी कहते हैं कि प्रकाशित करदो। "हमने जो कुछ कहा है त्रिकाल में भी हम उससे अन्यथा नहीं कह सक्ते। चंद्रसागर क्या कहता रहता है कि हम संघ में हैं ! उससे जाकर कहना तो, वो हमारे पास आनेका साहस भी कर सक्ता है" ?

इसके पश्चात् पंडितजी आचार्य महाराज को प्रणाम कर चले आये।

इन प्रश्नोत्तरों से सर्व साधारण दिगम्बर जैन समाज अच्छी तरह समझ लेगी कि चंद्रसागरजी आचार्य संघ से अलग किये हुए हैं। आचार्य महाराज की आज्ञा से प्रचार नहीं कर रहे हैं, और उनका जो कुछ उपदेश है वह आगम के प्रतिकूल और मुनि पद के अयोग्य है। और ऐसे मुनि के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये यह बात श्रीमान् पूज्यपाद आचार्य महाराज ने प्रश्न नं. १० के उत्तर में साफ साफ बतला दी है। अतएव दि. जैन समाज इन्दौर ने जो कुछ किया है वह उचित ही किया है। इसमें किसी प्रकार का संदेह करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

इन्दौर,
ता. १२-१-४१

द. सरूपचंद हुकमचंद.

ब. वि प्रेस लि., इन्दौर.

प्रकाशकः—
श्री दिगंबर जैन मुनि धर्म रक्षक कमेटी
इन्दोर.

श्री अ. बि. प्रेस, लि., इन्दोर.